5 जैनेन्द्र कुमार

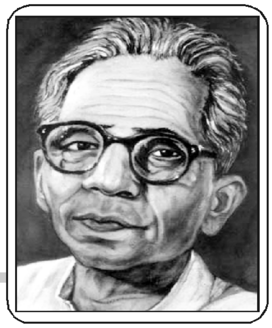

➡ व्यक्तित्व

जैनेन्द्र का जन्म 1905 ई0 में अलीगढ़ (कौड़ियागंज) में हुआ था। बाल्यावस्था का नाम आनन्दीलाल था। हस्तिनापुर में स्थापित एक गुरुकुल में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए व्यवस्था की गयी तथा उसी संस्था में आपका वर्तमान नामकरण भी हुआ। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने उच्च शिक्षा के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में प्रवेश लिया। किन्तु, कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देने की प्रेरणा से पढ़ाई छोड़ कर दिल्ली चले गये। दिल्ली में आपने लगभग दो वर्ष तक व्यापार का भी काम किया। कुछ क्रान्तिकारी राजनीतिक पत्रों के संवाददाता के रूप में भी कार्य किया। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आपका लेखन-कार्य शिथिल नहीं हुआ। इसी बीच आपके प्रथम उपन्यास 'परख' को अकादमी पुरस्कार मिला। राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा। इनकी प्रतिभा को देखते हुए 'आगरा विश्वविद्यालय' तथा 'गुरुकुलकाँगड़ी विश्वविद्यालय' ने इनको डी॰ लिट् की उपाधि से सम्मानित किया। 24 दिसम्बर, 1988 ई0 में आपका निधन दिल्ली में हुआ।

➡ कृतित्व

आपके कहानी संग्रह हैं—**'फाँसी'**, **'वातायन'**, **'नीलम देश की राजकन्या'**, **'एक रात'**, **'दो चिड़ियाँ'**, **'पाजेब'** तथा **'जयसन्धि'**। आपकी सम्पूर्ण कहानियाँ **'जैनेन्द्र की कहानियाँ'** शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुई हैं।

आपने **'परख'**, **'तपोभूमि'**, **'सुनीता'**, **'त्यागपत्र'**, **'कल्याणी'**, **'सुखदा'**, **'विवर्त'**, **'व्यतीत'** और **'जयवर्धन'** उपन्यास भी लिखे हैं जो साहित्य-जगत् में बहुचर्चित तथा लोकप्रिय हुए हैं। आपने अनुवाद और सम्पादन का काम भी किया है। आपके अनेक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अनेक निबन्ध-संग्रह **'प्रस्तुत प्रश्न'**, **'जड़ की बात'**, **'पूर्वोदय'**, **'साहित्य का श्रेय और प्रेय'**, **'मन्थन'**, **'सोच-विचार'**, **'काम-क्रोध'**, **'परिवार'**, **'साहित्य संचय'**, **'विचार-वल्लरी'** आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

➡ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

जैनेन्द्र की कहानी-कला चरित्र की निष्ठा तथा संवेदना के व्यापक धरातल पर विकसित हुई है। आपकी कहानियों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विशेष रूप से उभरा हुआ है। दार्शनिक आधार पर लिखी हुई आपकी कहानियों में आपके गम्भीर चिन्तन एवं बौद्धिक सघनता का समावेश हुआ है। आपकी कहानियों के कथानक मुख्य रूप से संवेदना पर आधारित

हैं तथा पाठक के अन्तस्तल को स्पर्श करते हुए गतिशील हुए हैं। आपकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक तथा जीवन-दर्शन-परक भी हैं। फलतः उनमें विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। आपकी प्रमुख कहानियाँ हैं—**'जाह्नवी'**, **'पाजेब'**, **'एक रात'**, **'मास्टरजी'** आदि। आपके अधिकतर कथानक स्पष्ट तथा सूक्ष्म हैं। उनमें व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समाज के जीवन का चित्रण किया गया है। आपने कथा-वस्तु के विकास में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा तथा मानवीय आदर्शों की स्थापना को महत्त्व दिया है।

आपने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तथा विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोविश्लेषण के माध्यम से पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों तथा मानसिक उलझनों को व्यक्त किया गया है। आपके पात्र मुख्यतः अन्तर्मुखी हैं। आप विशिष्ट पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व देने में सफल रहे हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं जो प्रायः सामान्य कोटि में आते हैं।

जैनेन्द्र की शैली के विविध रूप हैं, जिनमें दृष्टान्त, वार्त्ता तथा कथा-शैलियाँ मुख्य हैं। नाटकीय एवं स्वगत-भाषण शैलियों का प्रयोग भी अनेक कहानियों में हुआ है। संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों को समेटे आपकी भाषा भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित शब्द-रचना तथा भावानुकूल शब्द-चयन आपकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में संवादों की सीमित योजना हुई है, तथापि उनके कथोपकथन मानव-चरित्र का विश्लेषण करते हुए, पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनकी मानसिक स्थितियों को उजागर करते हैं।

आपकी कहानियों में निश्चित लक्ष्य है तथा उनमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न भी हुआ है। आपने व्यक्ति के जीवन के आन्तरिक पक्षों, उसके रहस्यों एवं उसकी उत्कृष्टताओं को दार्शनिक दृष्टिकोण से उभारने का प्रयत्न किया है।

ध्रुव-यात्रा

(1)

राजा रिपुदमन बहादुर उत्तरी ध्रुव को जीतकर योरुप के नगर-नगर से बधाइयाँ लेते हुए हिन्दुस्तान आ रहे हैं। यह खबर अखबारों ने पहले सफे या मोटे अक्षरों में छापी।

उर्मिला ने खबर पढ़ी और पास पालने में सोते शिशु का चुम्बन किया।

अगले दिन पत्रों ने बताया कि योरुप के तट एथेन्स से हवाई जहाज पर भारत के लिए रवाना होते समय उन्होंने योरुप के लिए सन्देश माँगने पर कहा कि उसे 'अद्भुत' की पूजा की आदत छोड़नी चाहिए।

उर्मिला ने यह भी पढ़ा।

अब वह बम्बई आ पहुँचे हैं, जहाँ स्वागत की जोर-शोर की तैयारियाँ हैं। लेकिन उन्हें दिल्ली आना है। नागरिक आग्रह कर रहे हैं और शिष्ट-मण्डल मिल रहा है। उसकी प्रार्थना सफल हुई तो वह दिल्ली के लिए रवाना हो सकेंगे। अखबार के विशेष प्रतिनिधि का अनुमान है कि उनको झुकाना कठिन होगा। वह यद्यपि सबसे सौजन्य से मिलते हैं, पर यह भी स्पष्ट है कि उनको अपने सम्बन्ध के प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। संवाददाता ने लिखा है, ''मैं मिला तब उनका चेहरा ऐसा था कि वह यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों।''

उर्मिला ने पढ़ा और पढ़कर अखबार अलग रख दिया।

सचमुच राजा रिपुदमन बम्बई नहीं ठहर सके। छपते-छपते की सूचना है कि आज सबेरे के झुटपुटे में उनका जहाज निर्विघ्न दिल्ली पहुँच गया है।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन। उर्मिला रोज अखबार पढ़ती है। इन दिनों वह कहीं बाहर नहीं गयी। राजा रिपु को लोग अवकाश नहीं दे रहे हैं। सुना जाता है कि वह दिल्ली छोड़ेंगे। कहाँ जायेंगे, इसके कई अनुमान हैं। निश्चय यह है कि जायेंगे किसी कठिन यात्रा पर।

उर्मिला ने सदा की भाँति यह भी पढ़ लिया।

चौथे दिन एक बड़ा मोटा लिफाफा उसे मिला। अन्दर खत संक्षिप्त था। पढ़ा और उसी तरह मोड़कर लिफाफे में रख दिया। फिर बच्चे की ओर ध्यान दिया। वह जागने को तैयार न था। फिर भी उठाकर उसे कन्धे से लगाया और कमरे में डोलने लगीं।

(2)

इधर राजा रिपुदमन को अपने से शिकायत है। उन्हें नींद कम आती है। मन पर पूरा काबू नहीं मालूम होता। सामने की चीज पर एकाग्र होने में कठिनाई होती है। नहीं चाहते, वहाँ ख्याल जाते हैं। कभी तो अपनी ही कल्पनाओं से उन्हें डर लगने लगता है। अभी योरुप से आते हुए, ऊपर आसमान की तरह नीचे भी गहन और अपार नीलिमा को देखकर उन्हें होता था कि क्यों इस जहाज से मैं इस नगर में कूद नहीं पड़ूँ। सारांश इसी तरह की अस्त-व्यस्त बातें उनके मन में उठ आया करती हैं और वह अपने से असन्तुष्ट हैं।

योरुप में ही उन्होंने मानसोपचार के सम्बन्ध में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी। भारत में और तिस पर दिल्ली में रखकर जिन मारुति को नहीं जानते थे, उन्हीं के विषय में योरुप के देशों से वह बड़ी श्रद्धा लेकर लौटे हैं। इसलिए

अवकाश पाते ही वह उनकी शरण में पहुँचे। यद्यपि सन् 1960 की बात है कि जिस वर्ष आचार्य का देहान्त हुआ, पर उस समय वह जीवित थे।

अभिवादनपूर्वक आचार्य ने कहा, ''वैद्य के पास रोगी आते हैं। विजेता मेरे पास किस सौभाग्य से आये हैं?''

रिपु, ''रोगी ही आपके पास आया है। विजेता छल है और उस दुनिया के छल को दुनिया के लिए छोड़िये। पर आप तो जानते हैं।''

आचार्य, ''हाँ चेहरे पर आपके विजय नहीं पराजय देखता हूँ। शिकायत क्या है?''

रिपु, ''मैं खुद नहीं जानता। मुझे नींद नहीं आती। और मन पर मेरा काबू नहीं रहता।''

''हूँ, क्या होता है?''

''जो नहीं चाहता, मन के अन्दर वह सब कुछ हुआ करता है।''

''खासतौर पर आप क्या नहीं चाहते?''

''क्या कहूँ? यही देखिये के हिन्दुस्तान लौट आया हूँ, जबकि ध्रुव पर अभी बहुत काम बाकी है। विजेता शब्द व्यंग्य है, ध्रुव देश भी हम सबके लिए उद्यान होना चाहिए। एक अकेला झण्डा गाड़ आने से क्या होता है? यह सब काम काफी है। फिर भी मैं हिन्दुस्तान आ गया। भला क्यों?''

मारुति गौर से रिपुदमन को देखते रहे। बोले, ''तो हिन्दुस्तान न आना जरूरी था।''

''हाँ, आना किसी भी तरह जरूरी न था।''

''क्यों? हिन्दुस्तान तो घर है।''

''पर क्या मेरा? मेरा घर तो ध्रुव भी हो सकता है।''

आचार्य ने ध्यानपूर्वक रिपुदमन को देखते हुए कुछ हँसकर कहा, ''यानी हिन्दुस्तान को छोड़कर कोई घर हो सकता है।''

राजा रिपुदमन ने उत्साह से कहा, ''लेकिन क्यों कोई घर हो? और मेरे जैसे आदमी के लिए!''

आचार्य, ''खैर, अब हम काम की बातें करें। अभी मैं कुछ नहीं कह सकता। कल पहली बैठक दीजिये, तीन बजकर बीस मिनट पर। डायरी रखते हैं? नहीं, तो अब से कल तक की डायरी रखिये। साथ जो खर्च करें उसका पायी-पायी हिसाब और जिनसे मिलें उनका ब्योरा भी लिखियेगा।''

''वह सब अभी न कह सकूँगा। मैं सोचता हूँ, कोई खराबी नहीं है। मैं वैज्ञानिक से अधिक विश्वासी हूँ। विश्वास में बहुत शक्ति है। अब हम कल मिलेंगे।... जी नहीं, इसके लिए बाहर सेक्रेटरी है।''

बड़े-बड़े नोटों को वापस पर्स में रखते हुए राजा ने कहा, ''मेरा स्वास्थ्य आप मुझे दे दें तो मैं बड़ा ऋणी होऊँगा।''

आचार्य हँसकर बोले, ''लेकिन आप तो स्वस्थ ही हैं। मैं आत्मा को मानता और शरीर को जानता हूँ। शरीर आत्मा का यन्त्र है। यन्त्र आपका साबित है, निरोग है—सब अवयव ठीक है। कृपया कल सबेरे आप यहाँ के यन्त्र-मन्दिर में भी हो आयें। सेक्रेटरी सब बता देंगे। वहाँ आपके हृदय, मस्तिष्क और शेष शरीर का पूरा निरीक्षण हो जायगा और परिणाम दोपहर तक मैं देख चुकूँगा। यह सब शास्त्रीय सावधानी है और उपयोगी भी है। लेकिन आप मान लें कि आपका शरीर एकदम तन्दुरुस्त है।... कल डायरी लाइयेगा।''

अगले दिन रिपुदमन समय पर पहुँचे। आचार्य ने तरह-तरह के नक्शे और चित्र उनके आगे रखे और कहा, ''देखिये, आपके यन्त्र का पूरा खुलासा मौजूद है। मस्तक और हृदय-सम्बन्धी परिणाम सही नहीं उतरे हैं तो विकार उन अवयवों में मत मानिये। व्यतिरेक यों है भी सूक्ष्म... डायरी है?''

रिपुदमन ने क्षमा माँगी। कहा, ''मैं चित्त को उस जितना भी तो एकाग्र न कर सका।''

आचार्य हँसे। बोले, ''कोई बात नहीं; अगली बार सही, यह कहिए कि अपने भाई महाराज-साहब और रानी-माता से मिलने आप जाइयेगा। विजेता को जीतने के लिए मारके बहुत हैं, पर अपनों का मन जीतना भी छोटी बात नहीं है। मैंने कल फोन पर महाराज से बातें की थीं। आप जो करो वह उसमें खुशी हैं। लेकिन अपने सुख से आप इतने विमुख न

रहो—यह भी वह चाहते हैं। अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध मिल सकते हैं या आप चुन लो। विवाह अनिष्ट वस्तु नहीं है। वह तो एक आश्रम का द्वार है। क्यों, यह चर्चा अरुचिकर है?''

रिपुदमन ने कहा, ''जी, मैं उसके अयोग्य हूँ। विवाह से व्यक्ति रुकता है। वह बँधता है। वह तब सबका नहीं हो सकता। अपना एक कोल्हू बनाकर उसमें जुता हुआ चक्कर में ही घूम सकता है। नहीं, उस बारे में मुझे कुछ कहने को नहीं है।''

आचार्य हँसकर बोले, ''विवाह चक्कर सही। लेकिन प्रेम?''

रिपुदमन ने कुछ जवाब नहीं दिया।

''प्रेम से तो नाराज नहीं हो? विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है। इससे विवाह की बात तो दूकानदारी की है। सच्चाई की बात प्रेम है। इस बारे में तुम अपने से बात करके देखो। वह बात डायरी में दर्ज कीजियेगा। अब परसों मिलेंगे।''

''परसों यदि न गया।''

''कहाँ न गये?''

''यही हिमालय या कहीं।''

''जहाँ चाहे जाओ। लेकिन मेरा दो बैठकों का कर्ज अभी बाकी है। परसों वहीं तीन-बीस पर आप आओगे। अब घड़ी हमें समय देना नहीं चाहती।''

''परसों के विषय में मैं आशावान से अधिक नहीं हूँ।''

''अच्छा तो कल उनसे मिलकर आशा को विश्वास बना लीजिए, जिनसे न मिलने के लिए मुझसे मिला जाता है। फोन पर मिलिये, वह न हो और दूरी हो तो हवाई यात्रा कीजिए। पर खटका छोड़कर उनसे मिलिये—अवश्य और कल! रेग्युलेटर जहाँ है उसके विपरीत मेरी सलाह जाकर बेकार ही हो सकती है।''

रिपुदमन ने चमककर कहा, ''किसकी बात आप करते हैं।''

''नहीं जानता वह कौन है! और जानूँगा तो आप ही से जानूँगा।... देखिये, ध्रुव से और हिमालय से लड़ाई भी ठीक-ठीक तभी आपकी चलेगी, जब अपनी लड़ाई एक हद तक सुलझ चुकेगी। प्रेम का इनकार अपने से इनकार है।... लेकिन घड़ी की आज्ञा का उल्लंघन हम अधिक नहीं करेंगे।''

''देखिये, परसों यदि आ सका।''

''आ जायेंगे... नमस्कार।''

''नमस्कार।''

(3)

समय सब पर बह जाता है और अखबार कल को पीछे छोड़ आज पर चलते हैं। राजा रिपु नयेपन से जल्दी छूट गये। ऐसे समय सिनेमा के एक बॉक्स में उर्मिला से उन्होंने भेंट की। उर्मिला बच्चे को साथ लायी थी। राजा सिनेमा के द्वार पर उसे मिले और बच्चे को गोद में लेना चाहा। उर्मिला ने जैसे यह नहीं देखा और अपने कन्धे से उसे लगाये वह उनके साथ जीने पर चढ़ती चली गयी। बॉक्स में आकर सफलतापूर्वक उन्होंने बिजली का पंखा खोल दिया। पूछा, ''कुछ मँगाऊँ?''

''नहीं!''

घण्टी बजाकर आदमी को बुलाया। कहा, ''दो क्रीम?''

उसके जाने पर कहा, ''लाओ मुझे दो न, क्या नाम है!''

उर्मिला ने मुस्कराकर कहा, ''नाम अब तुम दो।''

''तो लो, आदित्यप्रसन्नबहादुर, खूब है!''

''बड़े आदमी बड़ा नाम चाहते हैं। मैं तो मधु कहती हूँ।''

"तो वह भी ठीक है, माधवेन्द्रबहादुर, खूब है।"

"तुम जानो। मुझे तो मधु काफी है।"

इस तरह कुल बातें हुईं और बीच ही में जरूरत हुई कि दोनों खेल से उठ जायँ और कहीं जाकर आपस की सफाई कर लें।

दूर जमुना किनारे पहुँचकर राजा ने कहा, "अब कहो, मुझे क्या कहती हो?"

"कहती हूँ कि तुम क्यों अपना काम बीच में छोड़कर आये?"

"मेरा काम क्या है?"

"मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता जरूर तुम्हारा काम नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे कहा, तुम उससे ज्यादा के लिए हो?"

"उर्मिला, अब भी मुझसे नाराज हो?"

"नहीं, तुम पर गर्वित हूँ।"

"मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला, मुझे जो कहो थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।"

"देखो राजा तुम भूलते हो। गिरिस्ती की-सी बात न करो। महाप्राणों की मर्यादा और है। तुम उन्हीं में हो। मेरे लिए क्या यही गौरव कम है कि मैं तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ। मुझे दूसरी सब बातों से क्या मतलब है? लेकिन तुम्हें हक नहीं कि मुझसे घिरो। दुनिया को भी जताने की जरूरत नहीं कि मेरा बालक तुम्हारा है। मेरा जानना मेरे गर्व को काफी है। मेरा अभिमान इसमें तीसरे को शरीक न करेगा। लेकिन मैं अपने को क्षमा नहीं कर सकूँगी, अगर जानूँगी कि मैं तुम्हारी गति में बाधा हूँ। अपने भीतर के वेग को शिथिल न करो, तीर की नाईं बढ़े चलो कि जब तक लक्ष्य पार हो। याद रखना कि पीछे एक है जो इसी के लिए जीती है।"

"उर्मिला, तुमने मुझे ध्रुव भेजा। कहती थी—उसके बाद मुझे दक्षिणी ध्रुव जीतने जाना होगा। क्या सच मुझे वहीं जाना होगा?"

"राजा, कैसी बात करते हो! तुम कहीं रुक कैसे सकते हो? जाना होगा, नहीं जाओगे? अतुल वेग तुममें है, क्या वह यों ही? नहीं, मैं देखूँगी कि कुछ उसके सामने नहीं टिक सकता। मैं तुम्हारी बनी, तो क्या इतना नहीं कर सकती? इस पुत्र को देखो। भवितव्य के प्रति यह तुम्हारा दान है। अब तुम उऋण हो, गति के लिए मुक्त हो। ध्रुव धरती के हो चुकेंगे, जबकि आकाश के सामने होंगे। राजा तुमको रुकना नहीं है। पथ अनन्त हो, यही गति का आनन्द है।"

"उर्मिला, मैं आचार्य मारुति के यहाँ गया था—"

"मारुति! वह ढोंगी?"

"वह श्रद्धेय है, उर्मिला।"

"जानती हूँ, वह स्त्री को चूल्हे के और आदमी को हल के लिए पैदा हुआ समझता है। वह महत्त्व का शत्रु और साधारणता का अनुचर है। उसने क्या कहा?"

"तुम उन्हें जानती हो?"

"माँ उनकी भक्त थी। वह अक्सर हमारे यहाँ आते थे। उन्हीं की सीख से माँ ने मुझे संस्कृत पढ़ायी और नयी हवा से बचाया। तभी से जानती हूँ। वह तेजस्विता का अपहर्ता है। अब वहाँ न जाना। उसने कहा क्या था?"

"कहा था, यह गति अगति है। जगह बदलना नहीं, सचेत होना गतिशीलता का लक्षण है। उसकी शायद राय है कि मुझे घूमना नहीं, विवाह करना चाहिए।"

"मैं जानती थी। और तुम्हारी क्या राय है?"

"वही जानने तुम्हारे पास आया हूँ। मारुति सब जानते हैं, मुझको तुम भी जानती हो। इसलिए तुम ही कहो, मुझको क्या करना है?"

"'विवाह नहीं करना है।''

''उर्मिला!''

''तुम्हारा शरीर स्वस्थ है और रक्त उष्ण है तो...''

''उर्मिला!''

''तो स्त्रियों की कहीं कमी नहीं है।''

''बको मत, उर्मिला, तुम मुझे जानती हो।''

''जानती हूँ, इसी से कहती हूँ। तुम्हारे लिए क्या मैं स्त्री हूँ? नहीं, प्रेमिका हूँ। मैं इस बारे में कभी भूल नहीं करूँगी। इसीलिए किसी स्त्री के प्रति तुममें मैं निषेध नहीं चाह सकती। मुझमें तुम्हारे लिए प्रेम है, इससे सिद्धि के अन्त तक तुम्हें पहुँचाये बिना मैं कैसे रह सकती हूँ।''

''उर्मिला, सिद्धि मृत्यु से पहले कहाँ है।''

''वह मृत्यु के भी पार है, राजा! इससे मुझ तक लौटने की आशा लेकर तुम नहीं आओगे। सौभाग्य का क्षण मेरे लिए शाश्वत है। उसका पुनरावर्तन कैसा?''

''उर्मिला, तो मुझे जाना ही होगा? तुम्हारे प्रेम-दया नहीं जानेगा?''

''यह क्या कहते हो, राजा! मैं तुम्हें पाने के लिए भेजती हूँ, और तुम मुझे पाने के लिए जाते हो। यही तो मिलने की राह है। तुम भूलते क्यों हो?''

''उर्मिला, आचार्य मारुति ने कहा था—साधारण रहो, सरल रहो। हम दोनों कहीं अपने साथ छल तो नहीं कर रहे हैं?''

''नहीं राजा, मारुति नहीं जानता। वह समझ की बात समझ से जो परे है, उस तक प्रेम ही पहुँच सकता है। जाओ राजा, जाओ। मुझको परिपूर्ण करो, स्वयं भी सम्पूर्ण होओ।''

''देखो उर्मिला, तुम भी रो रही हो।''

''हाँ, स्त्री रो रही है, प्रेमिका प्रसन्न है। स्त्री की मत सुनना, मैं भी पुरुष की नहीं सुनूँगी। दोनों जने प्रेम की सुनेंगे। प्रेम जो अपने सिवा किसी दया को, किसी कुछ को नहीं जानता।''

(4)

पौने चार बजे राजा रिपु आचार्य के यहाँ पहुँचे। डायरी दी। आचार्य ने उसे गौर से देखा। अनन्तर नोटबुक अलग रखी। कुछ देर विचार में डूबे रहे। अनन्तर सहसा उबरकर बोले, ''क्षमा कीजियेगा। मैं कुछ याद करता रह गया। आपने डायरी में संक्षिप्त लिखा। उर्मिला माता है और कुमारी है—यही न?''

''जी।''

''तुम्हारे पुत्र की अवस्था क्या है?''

''वर्ष से कुछ अधिक है।''

''उत्तरी ध्रुव जाने में उर्मिला की सम्मति थी?''

''प्रेरणा थी।''

''यह विचार उसने कहाँ से पाया?''

''शायद मुझसे ही।''

''आरम्भ से तुम विवाह को उद्यत थे, वह नहीं?''

''जी नहीं। मैं बचता था, वह उद्यत थी।''

''हुँह! बचते थे, अपनी स्थिति और माता-पिता के कारण?''

''कुछ अपने स्वप्नों के कारण भी।''

"हुँह... फिर?"

"गर्भ के बाद मैं तैयार हुआ कि हम साथ रहें।"

"विवाहपूर्वक?"

"जी, वह चाहे तो विवाहपूर्वक भी।"

"हूँह,... फिर?"

"तब उसका आग्रह हुआ कि मुझे ध्रुव के लिए जाना होगा।"

"तो उस आग्रह की रक्षा में आप गये?"

"पूरी तरह नहीं। मन से मैं भी साथ रहने का बहुत इच्छुक न था। इससे निकल जाना चाहता था।"

"तुम्हारे आने से तो वह प्रसन्न हुई।"

"शायद हुई। लेकिन रुकने से अप्रसन्न है।"

"क्या कहती है?"

"कहती है कि जाओ। जय-यात्रा की कहीं समाप्ति नहीं। सिद्धि तक जाओ जो मृत्यु के पार है।"

अकस्मात् आवेश में आकर आचार्य बोले, "कौन, उर्मिला? वही धनञ्जयी की लड़की? वह यह कहती है?

"जी!"

"वह पागल है।"

"यही वह आपके बारे में कहती है।"

आचार्य जोर से बोले, "चुप रहो, तुम जानते नहीं। वह मेरी बेटी है।"

"बेटी!"

"मैं बुड्ढा हूँ। रिपु, तुम समझदार हो। हाँ, सगी बेटी।"

"आचार्य जी, यह आप क्या कह रहे हैं? तो आप सब जानते थे।"

"सब नहीं तो बहुत-कुछ जानता ही था। देखो रिपुदमन, अब बताओ तुम क्या कहते हो?"

"मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं कहता। मेरे लिए सब उर्मि से पूछिये।"

"सुनो रिपुदमन, तुम अच्छे लड़के हो। उर्मि मुझसे बाहर न होगी। पुत्र की व्यवस्था हो जायेगी और तुम लोग विवाह करके यहीं रहोगे।"

रिपुदमन ने हाथों से मुँह ढँककर कहा, "मैं कुछ नहीं जानता। उर्मि कहे, वही मेरी होनहार है।"

"उर्मि तो मेरी ही बेटी है। रिपुदमन, निराश न हो।"

(5)

आचार्य के समक्ष पहुँचकर उर्मिला ने कहा, "आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ बेटी, रिपुदमन ने सब कहा है। जो हुआ, हुआ। अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।"

"अब से मतलब कि पहले नहीं करना चाहिए था?"

"विवाह हुआ है तब तो खुशी की बात है, फिर वह प्रकट क्यों न हो? तुम दोनों साथ रहो।"

"भगवान् पर तो सब प्रकट है। और साथ बहुतेरे लोग रहते हैं।"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"वही जो राजा रिपुदमन उस अवस्था में चाहते थे, जब मुझे मिले थे। उनके स्वप्न मेरे कारण भग्न होने चाहिए कि पूर्ण? मेरी चिन्ता उन्हें उनके प्रकृत मार्ग से हटाये, यह मैं कैसे सह सकती हूँ?"

"स्वप्न तो सत्य नहीं है, बेटी! तब की मन की बहक को उसके लिए सदा क्यों अंकुश बनाये रखना चाहती हो? एक भूल के लिए किसी से इतना चिढ़ना न चाहिए।"

"आचार्यजी, आप किस अधिकार से मुझसे यह कह रहे हैं?"

"रिपु ने जो अपनी हैसियत और माता-पिता के ख्याल से आरम्भ में विवाह में झिझक की, इसी का न यह बदला है?"

"आचार्यजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगे। शास्त्र में से स्त्री को आप नहीं जान लेंगे।"

"बेटी, फिर कोई किसमें किसको जानेगा, बता दो?"

"सब-कुछ प्रेम में से जाना जायगा जोकि मेरे लिये आपके पास नहीं है।"

"सच बेटी, मेरे पास वह नहीं है। और तेरे लिए जितना चाहूँ उतना है, यह मैं किसी तरह न कह सकूँगा। लेकिन तुमसे जो सच्चाई छिपाता रहा हूँ और अब छिपा रहा हूँ, वह अनर्थ अपने लिये नहीं, तेरे प्रेम के लिए ही मुझसे बन सका है, यह भी झूठ नहीं है। बेटी, मैं काफी जी लिया। अब मरने में देर लगाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। ऐसे समय तेरे अहित की बात कह सकूँगा, ऐसा निष्ठुर मुझे न मानना। रिपुदमन को भरमा मत, उर्मिला! किसी का सपना होने के लिए वह नहीं है। तुम लोग विवाह करो और राज-मार्ग पर चल पड़ो।"

उर्मिला ने हँसकर कहा, "आप थक गये हैं, आचार्यजी भीड़ चलती रही है, इसी कारण जो प्रशस्त और स्वीकृत हो गया है, वहाँ आपका राज-मार्ग है न? पर मुक्ति का पथ अकेले का है। अकेले ही उस पर चला जायगा। वहाँ पाण्डव तक पाँच नहीं हैं। सब एक-एक हैं।"

"बेटी, यह क्या कहती है? सनातन ने जिसको प्रतिष्ठा दी है, बुद्धि के अहंकार में उसका तर्जन श्रेयस्कर नहीं होने वाला है। उर्मिला, यह एक बुड्ढे की बात रखो। पर बेटी, उसे छोड़ो। बताओ, मुझे माफ कर सकोगी?"

"आप रिपुदमन की, अपनी समझ से उससे हित की ओर मोड़ना चाहते हैं, उसके लिए आपको क्षमा माँगने की जरूरत है?"

"तो तुम रिपु से नाराज ही रहोगी? उसके साथ अपने को भी दण्ड ही देती रहोगी?"

"मुझे पाने के लिए उन्हें जाना होगा, उन्हें पाने के लिए मुझे भेजना होगा—यह आपको कैसे समझाऊँ?"

"हाँ, मैं नहीं समझ सकूँगा। लेकिन मेरा हक और दावा है। सोचता था, भगवान् के आगे पहुँचूँगा, उससे पहले उस बात को कहने का मौका नहीं... ! क्यों तू अपने पिता की भी बात नहीं मानेगी?"

"पिता को जीते-जी इस सम्बन्ध में, मैं कब सन्तोष दे सकी?"

"बेटी, अब भी नहीं दे सकोगी?"

"उर्मिला ने चौंककर कहा, "क्यों आचार्यजी?"

मारुति का कण्ठ भर आया। काँपते हुए बोले, "हाँ बेटी! चाहे तो अब तू अपने बाप को सन्तोष और क्षमा दोनों दे सकती है।"

उर्मि स्तब्ध, आचार्य को देखती रही। उनकी आँखों से तार-तार आँसू बह रहे थे। उनकी दशा दयनीय थी। बोली, "मुझ अभागिन के भाग्य में आज्ञा-पालन तक का सुख, हाय, विधाता क्यों नहीं लिख सका? जाती हूँ, इस हतभागिन को भूल जाइयेगा।"

(6)

रिपुदमन ने कहा, "आचार्य से तुम मिली थीं?"

"मिली थी।"

"अब मुझे क्या करना है?"

"करना क्या है राजा, तुम्हें जाना है, मुझे भेजना है!"

"कहा जाना है—दक्षिणी ध्रुव!"

"हाँ, नहीं तो उत्तर के बाद कहीं तुम दक्षिण के लिए शेष न रहो।"

"दक्षिण के बाद फिर किसी के लिए शेष बचने की बात नहीं रह जायगी न?"

"दिशाओं के द्वार-दिगंत में हम खो जायँ। शेष यहाँ किसको रहना है?"

"छोड़ो, मैं तुम्हें नहीं समझता, तुम्हारी संस्कृत नहीं समझता। सीधे बताओ, मुझे कब जाना है?"

"जब हवाई जहाज मिल जाय।"

"तो लो, तुम्हारे सामने फोन से तय किये लेता हूँ।"

फोन पर भी बात करते समय टकटकी बाँधकर उर्मिला रिपु को देखती रही। अनन्तर पूछा, "तो परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया?"

"हाँ, हो गया।"

"लेकिन परसों कैसे जाओगे, दल जुटाना नहीं है?"

"तुम्हारा मन रखूँगा! दल के लिए ठहरूँगा।"

"लेकिन उसके बिना क्या होगा? नहीं, परसों तुम नहीं जाओगे।"

"और न सताओ उर्मिला, जाऊँगा। अमरीका को फोन किये देता हूँ। दक्षिण से कुछेक साथी हो जायेंगे।"

"नहीं राजा, परसों नहीं जाओगे।"

"मैं स्त्री की बात नहीं सुनूँगा; मुझे प्रेमिका के मन्त्र का वरदान है।"

आँखों में आँसू लाकर उर्मिला ने रिपु के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "परसो नहीं जाओगे तो कुछ हर्ज है? यह तो बहुत जल्दी है?"

रिपु हाथ झटककर खड़ा हो गया। बोला, "मेरे लिए रुकना नहीं है। परसों तक इसी प्रायश्चित में रहना है कि तब तक क्यों रुक रहा हूँ।"

उर्मिला के फैले हुए हाथ खाली रहे। और वह कहती ही रही, "राजा, ओ मेरे राजा!"

(7)

दुनिया के अखबारों में धूम मच गयी। लोगों की उत्कण्ठा का ठिकाना न था। योरुप, अमरीका, रूस आदि देशों के टेलीफोन जैसे इसी काम के हो गये। ध्रुव-यात्रा योजना की बारीकियाँ पाने के बारे में संवाददाताओं में होड़ मच उठी। रिपुदमन उन्हें कुछ न बता सका, यह उसकी दक्षता का प्रमाण बना। हवाई जहाज जो शटलैण्ड के लिए चार्टर हुआ था, उसकी विभिन्न कोणों से ली गयी असंख्य तस्वीरें छपीं।

उर्मिला अखबार लेती, पढ़ती और रख देती। अनन्तर शून्य में देखती रह जाती। नहीं तो बच्चे में डूबती।

एक दिन-दो दिन। वह कहीं बाहर नहीं गयी। टेलीफोन पास रख छोड़ा। पर कोई नहीं, कुछ नहीं अखबार के पन्नों से आगे और कोई बात उस तक नहीं आयी।

आज अन्तिम सन्ध्या है। राष्ट्रपति की ओर से दिया गया भोज हो रहा होगा। सब राष्ट्रदूत होंगे, सब नायक, सब दलपति। गई रात तक वह इन कल्पनाओं में रही।

तीसरा दिन। उर्मिला ने अखबार उठाया। सुर्खी है और बॉक्स में खबर है। राजा रिपुदमन सबेरे खून में मरे पाये गये। गोली का कनपटी के आर-पार निशान है।

खबर छोटी थी; जल्दी पढ़ ली गयी। लेकिन पूरे अखबार में विवरण और विस्तार के साथ दूसरी सूचनाएँ थीं। जिन्हें उर्मिला पढ़ती ही चली गयी, पढ़ती ही चली गयी। पिछली सन्ध्या को जगह-जगह राजा रिपुदमन के सम्मान में सभाएँ हुई थीं। उनकी चर्चा थी। खासकर राष्ट्रपति के उस भोज का पूरा विवरण था, जिसे दुनिया का एक महत्त्वपूर्ण समारोह कहा गया था।

उर्मिला रस की एक बूँद नहीं छोड़ सकी। उसने अक्षर-अक्षर सब पढ़ा।

दोपहर बीत गयी, तब नौकरानी ने चेताया कि खाना तैयार है। इस समय उसने भी तत्परता से कहा, ''मैं भी तैयार हूँ। यहीं ले आओ। प्लेट्स इसी अखबार पर रख दो।''

उसी दिन अखबारों ने अपने खास अंक में मृत व्यक्ति का तकिये के नीचे से मिला जो पत्र छापा था, वह भी नीचे दिया जाता है।

''सब के प्रति—

बन्धुओ,

मैं दक्षिणी ध्रुव जा रहा था, सब तैयारियाँ थीं। ध्रुव में मुझे महत्त्व नहीं है। फिर भी मैं जाना चाहता था। कारण, इस बार मुझे वापस आना नहीं था। ध्रुव के एकान्त में मृत्यु सुखकर होती। ध्रुव-यात्रा मेरी व्यक्तिगत बात थी, उसे सार्वजनिक महत्त्व दिया गया, यह अन्याय है। इसी शाम राष्ट्रपति और राष्ट्रदूतों ने मुझे बधाइयाँ दीं, मेरे पराक्रम को सराहा। पर उन्हें छल हुआ है। मैं यह श्रेय नहीं ले सकता। यह चोरी होगी। उस भ्रम में लोगों को रखना मेरे लिए गुनाह है। क्या अच्छा होता कि ध्रुव मैं जा सकता, लेकिन लोगों ने सार्वजनिक रूप से जो श्रेय मुझ पर डाला, उसका स्वल्पांश भी किसी तरह अपने साथ लेकर मैं नहीं बढ़ सकता हूँ। यात्रा एकदम निजी कारणों से थी। मुझे बहुत खेद है कि मैं किसी से मिले आदेश और उसे दिये अपने वचन को पूरा नहीं कर पा रहा हूँ; लेकिन ध्रुव पर भी मुझे बचना था नहीं। इसलिए बचना अब नहीं है। मुझे सन्तोष है कि किसी की परिपूर्णता में काम आ रहा हूँ। मैं पूरे होश-हवाश में अपना काम तमाम कर रहा हूँ। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ मेरी आत्मा की रक्षा करे!''

अभ्यास प्रश्न

1. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
2. संवाद की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु का विवेचन कीजिए और कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की मूल संवेदना को उद्घाटित कीजिए।
7. जैनेन्द्र की संकलित कहानी का सारांश लिखिए।
8. कहानी कला की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए।
9. 'ध्रुवयात्रा' के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
10. उद्देश्य की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए।
11. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की समीक्षा कीजिए।
12. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।
13. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की भाषा-शैली की समीक्षा कीजिए।
14. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

●●●